

ये भव्याः सारसम्यक्त्वं पालयन्ति विचक्षणाः। तेषां पादार्चनं भक्त्या के न कुर्वन्ति भूतले ॥१४॥
 ततस्ते जिनदासाद्या जिनभक्तिपरायणाः। समागत्य निजं गेहं संस्थिताः पुण्ययोगतः ॥१५॥
 जिनदासेन पृष्टश्च सावधिज्ञानलोचनः। मुनिः प्राह विशुद्धात्मा सर्वं तद्वैरकारणम् ॥१६॥
 त्रिभुवनैकहितं शिवकारणं शुचितरं प्रभजन्तु सुदर्शनम्।
 परमसौख्यकृते सुबुधोत्तमः किमिह चान्यमहाश्रमकारणैः ॥१७॥
 इति कथाकोशे दर्शनाऽपतिताख्यानं समाप्तम्।

१०६. अत्यक्तसम्यक्त्वाख्यानम्

नमस्कृत्य जिनं देवं देवदेवेन्द्रवन्दितम्। सम्यक्त्वामुक्तकाख्यानं द्वितीयं रचयाम्यहम् ॥१॥
 लाटदेशे सुविख्याते गलगोद्रहपत्तने। श्रेष्ठी श्रीजिनदत्तोभूज्जिनदत्तास्य कामिनी ॥२॥
 तयोर्जिनमतिः पुत्री रूपसौभाग्यशालिनी। संजाता पूर्वपुण्येन भवेद्रूपादिसम्पदा ॥३॥
 द्वितीयस्तु तथा श्रेष्ठी नागदत्तो विधर्मकः। नागदत्ताभवत्कान्ता रुद्रदत्तः सुतस्तयोः ॥४॥

सम्यग्दर्शन का पालन करते हैं, संसार में उनका आदर, मान कौन नहीं करता। इसके बाद जिनदास वगैरह सब लोग कुशलता से अपने घर आ गए। भक्ति से उत्पन्न हुए पुण्य ने इनकी सहायता की। एक दिन मौका पाकर जिनदास ने अवधिज्ञानी मुनि से कालदेव ने ऐसा क्यों किया इस बाबत का खुलासा पूछा। मुनिराज ने इस बैर का सब कारण जिनदास से कहा। जिनदास को सुनकर सन्तोष हुआ ॥१३-१६॥

जो बुद्धिमान् हैं, उन्हें उचित है या उनका कर्तव्य है कि वे परम सुख के लिए संसार का हित करने वाले और मोक्ष के कारण पवित्र सम्यग्दर्शन को ग्रहण करें। इसे छोड़कर उन्हें और बातों के लिए कष्ट उठाना उचित नहीं, कारण वे मोक्ष के कारण नहीं है ॥१७॥

१०६. सम्यक्त्व को न छोड़ने वाले की कथा

जिन्हें स्वर्ग के देव नमस्कार करते हैं, उन जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर सम्यक्त्व को न छोड़ने वाली जिनमती की कथा लिखी जाती है ॥१॥

लाटदेश के सुप्रसिद्ध गलगोद्रह नाम के शहर में जिनदत्त नाम का एक सेठ हो चुका है। उसकी स्त्री का नाम जिनदत्ता था। उसके जिनमती नाम की एक लड़की थी। जिनमती बहुत सुन्दरी थी। उसकी भुवनमोहिनी सुन्दरता देखकर स्वर्ग की अप्सराएँ भी लजा जाती थी। पुण्य से सुन्दरता प्राप्त होती है ॥२-३॥

यहीं पर एक दूसरा सेठ रहता था। उसका नाम नागदत्त था। नागदत्त की स्त्री नागदत्ता के रुद्रदत्त नाम का एक लड़का था। नागदत्त ने बहुतेरा चाहा कि जिनदत्त जिनमती का ब्याह उसके पुत्र रुद्रदत्त से कर दे। पर उसको विधर्म होने से जिनदत्त ने उसे अपनी पुत्री न ब्याही। जिनदत्त का यह

याचिता नागदत्तेन रुद्रदत्ताय सा सती। न दत्ता जिनदत्तेन तस्मै मिथ्यादृशे सुता ॥५॥
ततस्तौ नागदत्ताख्यरुद्रदत्तौ प्रपञ्चतः। मुनेः समाधिगुप्तस्य पार्श्वे भूत्वान्हिकौ तदा ॥६॥
परिणीय लसद्रूपां जिनमत्यभिधां च ताम्। पुनर्माहेश्वरौ जातौ दुर्दृशां सुमतिः कुतः ॥७॥
रुद्रदत्तस्ततो वक्ति भो प्रिये त्वमपि द्रुतम्। धर्मं माहेश्वरं सारं मदीयं च गृहाण वै ॥८॥
जिनेन्द्रचरणाम्भोज-षट्पदी वदति प्रिया। जिनमत्यभिधा सापि न युक्तं त्रिजगद्धितम् ॥९॥
त्यक्तुं मे जैनसद्धर्मं सुरेन्द्राद्यैः समर्चितम्। तं शर्मदं गृहाण त्वं त्यक्त्वा मिथ्यामतं प्रभो ॥१०॥
स्वस्वधर्मप्रवादेन तयोर्नित्यं प्रवर्तते। कलहस्तु गृहे युक्तं कुतः सौख्यं विधर्मतः ॥११॥
धर्मं निजं निजं व्यक्तं कुर्वतोश्च तयोस्ततः। काले यात्येकदा तत्र पत्तने कर्मयोगतः ॥१२॥

हठ नागदत्त को पसन्द न आया। उसने तब एक दूसरी युक्ति की। वह यह कि नागदत्त और रुद्रदत्त समाधिगुप्त मुनि से कुछ व्रत, नियम लेकर श्रावक बन गए और श्रावक सरीखी सब क्रियाएँ करने लगे। जिनदत्त को इससे बड़ी खुशी हुई और उसे इस बात पर पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि वे सचमुच ही जैनी हो गए हैं तब उसने बड़ी खुशी के साथ जिनमती का ब्याह रुद्रदत्त से कर दिया। जहाँ ब्याह हुआ कि इन दोनों पिता-पुत्रों ने जैनधर्म छोड़कर पीछा अपना धर्म ग्रहण कर लिया ॥४-७॥

रुद्रदत्त अब जिनमती से रोज-रोज आग्रह करने लगा कि प्रिये, तुम भी अब क्यों न मेरा ही धर्म ग्रहण कर लेती हो। वह बड़ा उत्तम धर्म है। जिनमती की जिनधर्म पर गाढ़ श्रद्धा थी। वह जिनेन्द्र भगवान् की सच्ची सेविका थी। ऐसी हालत में उसे जिनधर्म के सिवा अन्य धर्म कैसे रुच सकता था। उसने तब अपने विचार, बड़ी स्वतन्त्रता के साथ अपने स्वामी पर प्रकट किए। वह बोली-प्राणनाथ, आपका जैसा विश्वास हो, उस पर मुझे कुछ कहना-सुनना नहीं। पर मैं अपने विश्वास के अनुसार यह कहूँगी कि संसार में जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है जो सर्वोच्च होने का दावा कर सकता है। इसलिए कि जीवमात्र का उपकार करने की उसमें योग्यता है और बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं, स्वर्ग के देव, विद्याधर और चक्रवर्ती आदि उसे पूजते-मानते हैं फिर मैं ऐसी कोई बेजा बात उसमें नहीं पाती कि जिससे मुझे उसके छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़े। बल्कि मैं आपको भी सलाह दूँगी कि आप इसी सच्चे और जीव मात्र का हित करने वाले जैनधर्म को ग्रहण कर लें तो बड़ा अच्छा हो। इसी प्रकार इन दोनों पति-पत्नी की परस्पर बात-चीत हुआ करती थी। अपने-अपने धर्म की दोनों ही तारीफ किया करते थे। रुद्रदत्त जरा अधिक हठी था। इसलिए कभी-कभी जिनमती पर वह जरा गुस्सा भी हो जाता था। पर जिनमती बुद्धिमती और चतुर थी, इसलिए वह उसकी नाराजगी पर कभी अप्रसन्नता जाहिर न करती। बल्कि उसकी नाराजगी को हँसी का रूप दे झट से रुद्रदत्त को शान्त कर देती थी। जो हो, पर ये रोज-रोज की विवाद भरी बातें सुख का कारण नहीं होती ॥८-१२॥

भिल्लैः प्रज्वालिते क्रुद्धै-रग्निना दुष्टमानसैः। जाते कोलाहले कष्टं प्राणिनां प्राणसंकटे ॥१३॥
 तदा श्रीजिनमत्या च भणितो रुद्रदत्तकः। यस्य देवः करोत्युच्चैः सर्वशान्तिं क्षणादिह ॥१४॥
 तस्यावाभ्यां प्रकर्तव्यो धर्मः शर्मकरो ध्रुवम्। एवमस्त्विति संप्रोक्त्वा जनान्कृत्वा च साक्षिणः ॥१५॥
 ततोर्धं रुद्रदत्तोसौ ददौ रुद्राय मूढधीः। नैव कश्चिद्विशेषोभू-द्वह्निज्वालाविजृम्भिते ॥१६॥
 ब्रह्मादिभ्योपि दत्तार्थे नैव जातो विशेषकः। दुर्दृग्भ्यो दुष्टचित्तेभ्यो नैव शान्तिः कदाचन ॥१७॥
 जिनमत्यभिधा सापि ततः सद्धर्मवत्सला। दत्त्वार्हदादिपञ्चानामर्घं श्रीपरमेष्ठिनाम् ॥१८॥
 पादपद्मद्वयेभ्यश्च प्रोल्लसद्भक्तिनिर्भरा। पतिपुत्रवधूवर्गं धृत्वा स्वान्ते सुनिश्चला ॥१९॥
 कायोत्सर्गे स्थिता चित्ते कृत्वा पञ्च नमस्कृतिम्। तत्क्षणादेव संजाता वह्निशान्तिः जगद्धिता ॥२०॥
 तं दृष्ट्वातिशयं सर्वे रुद्रदत्तादयो मुदा। नत्वा श्रीमज्जिनं देवं संजाताः श्रावकोत्तमाः ॥२१॥
 अहो श्रीजिनधर्मस्य महिमा भुवनोत्तमः। वर्ण्यते केन भूलोके स्वर्गमोक्षसुखप्रदः ॥२२॥

इस तरह बहुत समय बीत गया। एक दिन ऐसा मौका आया कि दुष्ट भीलों ने शहर के किसी हिस्से में आग लगा दी। चारों ओर आग बुझाने के लिए दौड़ा-दौड़ पड़ गई। उस भयंकर आग को देखकर लोगों को अपनी जान का भी सन्देह होने लगा। इस समय को योग्य अवसर देख जिनमती ने अपने स्वामी रुद्रदत्त से कहा-प्राणनाथ, मेरी बात सुनिए। रोज-रोज का जो अपने में वाद-विवाद होता है, मैं उसे अच्छा नहीं समझती। मेरी इच्छा है कि यह झगड़ा रफा हो जाए ॥१३॥

इसके लिए मेरा यह कहना है कि आज अपने शहर में आग लगी है उस आग को जिसका देव बुझा दे, समझना चाहिए कि वही देव सच्चा है और फिर उसी को हमें परस्पर में स्वीकार कर लेना चाहिए। रुद्रदत्त ने जिनमती की यह बात मान ली। उसने तब कुछ लोगों को इस बात का गवाह कर अपने इष्ट आदि देवों के लिए अर्घ दिया, बड़ी भक्ति से उनकी पूजा-स्तुति कर उसने अग्नि शान्ति के लिए प्रार्थना की। पर उसकी इस प्रार्थना का कुछ उपयोग न हुआ। अग्नि जिस भयंकरता के साथ जल रही थी। वह उसी तरह जलती रही। सच है, ऐसे देवों से कभी उपद्रवों की शान्ति नहीं होती, जिनका हृदय दुष्ट है, जो मिथ्यात्वी है ॥१४-१७॥

अब धर्मवत्सला जिनमती की बारी आई उसने बड़ी भक्ति से पंच परमेष्ठियों के चरण-कमलों को अपने हृदय में विराजमान कर उनके लिए अर्घ चढ़ाया। इसके बाद वह अपने पति, पुत्र आदि कुटुम्ब वर्ग को अपने पास बैठकर आप कायोत्सर्ग ध्यान द्वारा पंच-नमस्कार मन्त्र का चिन्तन करने लगी। इसकी इस अचल श्रद्धा और भक्ति को देखकर शासन देवी बड़ी प्रसन्न हुई उसने तब उसी समय आकर उस भयंकर आग को देखते-देखते बुझा दिया। इस अतिशय को देखकर रुद्रदत्त वगैरह बड़े चकित हुए। उन्हें विश्वास हुआ कि जैनधर्म ही सच्चा धर्म है। उन्होंने फिर सच्चे मन से जैनधर्म की दीक्षा ले श्रावकों के व्रत ग्रहण किए। जैनधर्म की खूब प्रभावना हुई। सच है-संसार में श्रेष्ठ जैनधर्म की महिमा को कौन कह सकता है जो कि स्वर्ग-मोक्ष का देने वाला है।

यथा श्रीजिनमत्याख्या चक्रे सम्यक्त्वरक्षणम्। तथान्यैर्भव्यमुख्यैश्च तत्कार्यं सच्छुभश्रिये ॥२३॥
श्रीमज्जैनपदाम्बुजेषु नितरां भृङ्गी पवित्राशयासद्दृष्टिर्जिनशब्दपूर्वकमतिः शर्मप्रदा सा सती।
नानावस्त्रसुवर्णरत्ननिकरैर्देवादिभिः पूजितासद्दृष्टिर्जिनभक्तिनिश्चलमतिः कैः कैर्न संपूज्यते ॥२४॥

इति कथाकोशे अत्यक्तदर्शनाख्यानं समाप्तम्।

१०७. सम्यक्त्वप्रभावाख्यानम्

श्रीजिनं त्रिजगद्देवं नमस्कृत्य सुरार्चितम्। ब्रुवे सम्यक्त्वमाहात्म्यं चेलिनीश्रेणिकाश्रितम् ॥१॥
देशेऽत्र मगधे ख्याते पुरे राजगृहे शुभे। राजा प्रश्रेणिको राज्ञी सुप्रभा गुणमण्डिता ॥२॥
पुत्रः श्रीश्रेणिको जातस्तयोः पुत्रशिरोमणिः। धीरो वीरोतिगंभीरो दाता भोक्ता भटाग्रणीः ॥३॥
एकदा नागधर्मेण राज्ञा प्रत्यन्तवासिना। दुष्टाश्वः प्रेषितः पूर्व-वैरिणा तस्य भूपतेः ॥४॥
दुष्टस्तुरंगमः सोपि प्रेरितो नैव गच्छति। खञ्चितो याति वेगेन दुष्टानामीदृशी गतिः ॥५॥
बाह्यालीं निर्गतो राजा तेनाश्वेनैकदा मुदा। प्रश्रेणिको महाटव्यां नीतो दुष्टेन कष्टतः ॥६॥

जिस प्रकार जिनमती ने अपने सम्यक्त्व की रक्षा की, उसी तरह अन्य भव्यजनों को सुख प्राप्ति के लिए पवित्र सम्यग्दर्शन की सदा सुरक्षा करते रहना चाहिए ॥१८-२३॥

जिनेन्द्र भगवान् के चरणों में जिनमती की अचल भक्ति, उसके हृदय की पवित्रता और उसका दृढ़ विश्वास देखकर स्वर्ग के देवों ने दिव्य वस्त्राभूषणों से उसका खूब आदर-मान किया और सच भी है-सच्चे जिनभक्त सम्यग्दृष्टि की कौन पूजा नहीं करते ॥२४॥

१०७. सम्यग्दर्शन के प्रभाव की कथा

जो सारे संसार के देवाधिदेव हैं और स्वर्ग के देव जिनकी भक्ति से पूजा किया करते हैं उन जिन भगवान् को प्रणाम कर महारानी चेलना और श्रेणिक के द्वारा होने वाली सम्यक्त्व के प्रभाव की कथा लिखी जाती है ॥१॥

उपश्रेणिक मगध के राजा थे राजगृह मगध की राजधानी थी। उपश्रेणिक की रानी का नाम सुप्रभा था। श्रेणिक इसी के पुत्र थे। श्रेणिक जैसे सुन्दर थे, वैसे ही उनमें अनेक गुण भी थे। वे बुद्धिमान् थे, बड़े गम्भीर प्रकृति के थे, शूरवीर थे, दानी थे और अत्यन्त तेजस्वी थे ॥२-३॥

मगध राज्य की सीमा से लगते ही एक नागधर्म नाम के राजा का राज्य था। नागदत्त की और उपश्रेणिक की पुरानी शत्रुता चली आती थी। नागदत्त उसका बदला लेने का मौका तो सदा ही देखता रहता था, पर उस समय उपश्रेणिक के साथ कोई भारी मनमुटाव न था। वह कपट से उपश्रेणिक का मित्र बना रहता था। यही कारण था कि उसने एक बार उपश्रेणिक के लिए एक दुष्ट घोड़ा भेंट में भेजा। घोड़ा इतना दुष्ट था कि वैसे तो वह चलता ही न था और उसे जरा ही ऐड़ लगाई या लगाम खींची कि बस यह फिर हवा से बातें करने लगता था। दुष्टों की ऐसी गति ही होती है,